International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 26-05-2023, Accepted: 12-06-2023, Published: 27-06-2023
Volume 9, Issue 3, 2023, Page No. 26-27

21वीं सदी की प्रमुख महिला लेखिकाओं की कहानियों में साम्प्रदायिक विमर्श

पूजा रानी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, महायोगी गुरु गोरखनाथ राजकीय महाविद्यालय, बिथ्याणी, यमकेश्वर, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश
साहित्य अपने समय, समाज और संस्कृति का संवाहक होता है। समन्वय की भावना ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। आजादी के साथ ही साम्प्रदायिकता का रूप सिर्फ धार्मिक न रहकर राजनीतिक रूप भी लेने लगा है, जो आज एक महामारी के रूप में पूरे देश को ग्रसित कर रहा है। इसके बीज राष्ट्र निर्माण के समय ही अंकुरित हो गये थे। आज चारों ओर भेदभाव, नफरत और कटुता का जहर फैलता जा रहा है।
वर्तमान समय में राजनीतिक ध्रुवीकरण देखने में आ रहा है। ऐसे समय में साहित्य में साम्प्रदायिक सद्भाव होना अनिवार्य है; क्योंकि भविष्य में जब समाज को तोड़ने वाली शक्तियों का जिक्र आयेगा तो साहित्य की भूमिका पर अवश्य प्रश्न उठेगा। 21वीं सदी की प्रमुख महिला लेखिकाओं ने राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों के विघटन को बड़ी वेदना के साथ अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

मूल शब्दः राजनीतिक व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, मानवीय मूल्य

वर्तमान समय में राजनीति में हो रहे बदलाव और मूल्य संक्रमण के लिए जीवन–मूल्यों के प्रति बढ़ती उदासीनता और अनादर भी जिम्मेदार है। एक चरित्रनिष्ठ व्यक्ति को सिवाय काल्पनिक असन्तोष के आज के समय में क्या मिल सकता है। अवसर और सुविधाएँ पाने के लिए एक अन्धी दौड़ चारों ओर मची हुई है। आदर्श नैतिकता, चरित्र, धर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व सभी को रौंदता हुआ मनुष्य समृद्धि की मृग मरीचिका के पीछे भाग रहा है।
स्वतंत्रता के पश्चात् से आज तक राजनीति के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन आया है। उस समय की राजनीति जिस लक्ष्य को लेकर चली थी, उसे पूरा करना तो दूर रहा उल्टे उसे ठण्डे बस्ते में डालकर केवल आडम्बर के ढ़ोल पीटने लगी है। राजनीति के शीर्ष पर बैठे नेता धन, प्रतिष्ठा, वैभव तथा सत्ता की मदहोशी में राष्ट्र के निर्माण का संकल्प भूल गए। मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर शेष जनता राजनीति के कुचक्र का शिकार है।
भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार दिये जाने की बात कही गयी। इस आशा के साथ कि सभी लोग आपसी मतभेद भुलाकर भारत को एक मजबूत राष्ट्र के रूप में खड़ा करें। "संविधान के धर्म निरपेक्ष स्वरूप ने निम्न जातियों में स्वाभिमान की भावना के साथ उन्हें ऊपर उठने को प्रेरित किया है। निम्न वर्गों के उत्थान हेतु सरकार ने विभिन्न प्रयत्न किए हैं; ताकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समता एवं न्याय की भावना को वे भली भाँति समझ सकें। संविधान में शिक्षा पाने का अधिकार भी मौलिक अधिकार है। ग्रामीणों में उसके प्रचार एवं प्रसार के लिए विभिन्न योजनाएं बनाई गयी हैं।"[1]
"भारत की शासन व्यवस्था बदल चुकी है पर शोषण की प्रक्रिया में कहीं कोई अंतर नहीं आया, बल्कि शोषण का रूप बदलकर और तीव्र हो गया।"[2]
21वीं सदी की लगभग सभी महिला लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में भारत की प्रजातांत्रिक व्यवस्था और उसमें क्या कमियाँ हैं? इस पर दृष्टि डाली है। इनके पात्र भारतीय संविधान पर और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक दिखे। महिला पात्र भी अपने अधिकारों के प्रति सदैव जागरूक दिखाई दी और यही इन लेखिकाओं की सार्थकता है।

व्यवस्था परिवर्तन का आग्रह

21वीं सदी की महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में बिगड़ते राजनीतिक परिदृश्य को देखते हुए व्यवस्था में परिवर्तन का आग्रह किया है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से कुरूप होती राजनीति को परिवर्तित करने का प्रयास किया है।
उर्मिला शिरीष की कहानी में 1984 के साम्प्रदायिक दंगे के साथ ही प्रतिरोध के स्वर भी हैं। जिसके मूल में किसान रामरतन और मौलाना साहब जैसे पात्रों की समझदारी के साथ आवश्यकता पूर्ति भी है। रामरतन अपना सामान बेचने के लिए मुस्लिम बस्ती में कदम रखता है, जहाँ इससे पूर्व कोई हिन्दू नहीं आया था। साम्प्रदायिक दंगे के पश्चात् दोनों ही पक्ष एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। रामरतन के बस्ती में रहने की बात पर मुस्लिम समुदाय के लोग विरोध करते हैं। अफजल मियाँ दंगे में अपने दो बेटे खो चुके हैं फिर भी अपनी कौम को समझाते हुए कहते हैं, "क्या आजादी के बाद दंगे फसाद नहीं हुए थे? आज भी सरहद के पार लोगों के दिल में कशिश है, प्यार मुहब्बत है। हम यहाँ पहले भी अपनी मर्जी से थे, आज भी हैं, हमें भी इस वतन से प्यार है। इस जमीन को अपना न समझा होता तो लेते पनाह। फिर झगड़े कहाँ नहीं होते? सियासत की लड़ाई में हम यूँ ही बेकार मारे जाते हैं हर धर्म मुहम्ब्बत करना सिखाता है नफरत नहीं।"[3]
कुछ समय पश्चात् बलवाइ रामरतन की दुकान को आग लगा देते हैं। सब कुछ जलकर नष्ट हो जाता है, किन्तु चैन अमन के लिए रामरतन पुलिस के आगे किसी का नाम नहीं लेता–
"वह मौन बना था, पत्थर की तरह निस्पंद। बुरे लोग तो हर कौम में होते हैं, जैसे अच्छे लोग। उसकी आत्मा समझा रही थी।"[4]
इस कहानी में हम देखते हैं कि दोनों सम्प्रदाय अपने अस्तित्व रक्षा के लिए इस कदर प्रयासरत हैं कि बाकी सब गौण होने लगता है। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं–
"साम्प्रदायिकता एक संक्रामक रोग है। जब एक जाति भयानक रूप से साम्प्रदायिक हो उठती है तब दूसरी जाति भी अपने अस्तित्व का ध्यान करने लग जाती है और उसके भाव भी शुद्ध नहीं रह पातें।"[5]
उर्मिला शिरीष की एक अन्य कहानी में आशिक अली ऐसे व्यक्ति के रूप में हैं जो कर्म को ही पूजा मानकर केवल उसे पूरी शिद्दत से निभाते हैं; किन्तु उनकी त्रासदी का कारण केवल उनका

मुस्लिम समुदाय से सम्बन्धित होना होता है, वे हिन्दू धर्म का भी पूरा सम्मान करते हैं–

"ऐसे इन्सान को कोई कैसे शुद्ध मुसलमान मान ले, जिसका कोई भी कर्म, धर्म और दीन ईमान से सौ प्रतिशत मेल न खाता हो। पर विडम्बना देखिए कि नाम से, काम से, ख्यालातों से, बुरके वाली बीवी से कुल मिलाकर ऊपरी तौर पर आशिक अली को लोगों की नजरों में उसे मुसलमान बना देती थी।"[6]

बाहरी रूप और धर्मगत व्यवहार ही किस प्रकार एक नेक मनुष्य को साम्प्रदायिक दंगे में मृत्यु का शिकार बना देते हैं इसे यह कहानी संवेदनशीलता के साथ चित्रित करती है।

स्वयं प्रकाश लिखते हैं, "साम्प्रदायिकता अधिकार चेतना का एक विकृत स्वरूप है और यह केवल हिन्दू मुसलमान का मसला न होकर बहुसंख्यकों की धौंस है जो अल्पसंख्यक समुदाय के नागरिकों को बराबर का इंसान नहीं समझना चाहते हैं।"[7]

व्यवस्था परिवर्तन और हिंसा का विकल्प

चित्रा जी की कहानी 'लपटें' में भी इसी तरह का परिदृश्य प्रस्तुत है। इस कहानी में नेताओं के कार्यकर्ता गुटबाजी करते हुए, नारेबाजी करते हुए आस–पड़ोस की दुकानों में आगजनी की घटनाएं करते हैं तथा इससे सामान्य लोगों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है।

"पति का गोल, मूंछों भरा चेहरा वितृष्णा से डरावना हो आया। और जाति अखबार पढ़े तो जाने इनकी पोलपट्टी! इनके छद्म! विधानसभा में उत्तर भारतीय विधायकों ने इनके जुल्मों के खिलाफ हंगामा खड़ा कर दिया तो अपनी जाति के उद्धारक यही नेता भारी–भरकम शब्दों में अपने गुंडों की वकालत करने उतर आये कि आत्मरक्षा के लिए किये गये प्रतिवाद–स्वरूप संभव है कि संयोगवश कोई लपट तबेले, दुकानों तक पहुंच गई हो। बल्कि हमारी पार्टी, हमारे कार्यकर्ता न होते तो इनके तबेले, दुकानें ही न फुके होते घर भी फूंके गये होते। विधायकों ने तर्क दिया कि संयोग एक खास वर्ग, जाति के लोगों के साथ ही क्यों घटा? तो पलटकर उन्होंने उत्तर भारतीय विधायकों को फटकारा कि वे तिल का ताड़ बनाकर जातीय सांप्रदायिकता की आंच पर अपनी रोटी सेंकने की कोशिश न करें ..... ।"[8]

निष्कर्ष

लगभग सभी महिला कहानीकारों ने विद्वेष और सौहार्द दोनों का चित्रण किया है। सदियों से साथ रहते–रहते जो एक साझी संस्कृति और आपसी समझदारी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विकसित हो गई है, उसके उज्जवल पक्ष का चित्रण करके कहानीकारों ने सद्भाव की सम्पुष्टि में अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है।

अधिकांश महिला लेखिकाओं ने समाज और राजनीति की घनिष्ठता तथा राजनीति के अच्छे और बुरे दोनों रूपों का यथार्थ चित्रण किया है। राजनीति कुछ कारणों से विकृत होती जा रही है। इन कारणों की इन लेखिकाओं ने खोज की और उन्हें दूर करने का उपाय भी सुझाया है। अपने पात्रों के माध्यम से इन लेखिकाओं ने भ्रष्ट एवं विकृत होती राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन का आग्रह किया है जो उनका एक सार्थक प्रयास है।

संदर्भ सूचि

1. गुप्त, ज्ञानचन्द, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, वर्ष (1974), अभिनव प्रकाशन, सीलमपुर, दिल्ली, पृष्ठ 27
2. गुप्ता, मंजुला, हिन्दी उपन्यासः समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, वर्ष (2004), सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 24
3. शिरीष, उर्मिला, ग्यारह लम्बी कहानियाँ, वर्ष (2016), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 56
4. 'वही', पृष्ठ 59
5. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, वर्ष 2011, लोक भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 715
6. शिरीष, उर्मिला, ग्यारह लम्बी कहानियाँ, वर्ष (2016), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 36
7. हंस पत्रिका, वर्ष (मई 2020), अक्षर प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, पृष्ठ 89
8. मुद्गल, चित्रा, आदि–अनादि, वर्ष (2009), सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 175